फुटलूज क्रांतिकारियों के फुटलूज सिद्धान्त

पिछले कुछ सालों में मजदूर आंदोलन की वास्तविक चुनौतियों से घबराकर कुछ लोगों ने मजदूर आंदोलन के बारे में ऐसे सिद्धान्त प्रतिपादित करने शुरू किये हैं जिनका मार्क्सवाद से कोई लेना–देना नहीं है। यह उन्होंने कतिपय 'मार्क्सवादी चिंतकों' और 'प्रसिद्ध श्रम इतिहासकारों' के हवाले से किया है जिन्हें अन्यथा वे मध्यमवर्गीय मार्क्सवादी बुद्धिजीवी कह कर चुटकियों में खारिज कर देते। अपनी बात को स्वीकार्य बनाने के लिए उन्होंने कम्युनिस्ट क्रांतिकारी आंदोलन में व्याप्त कठमुल्लावाद पर कस कर हमले किये हैं। उन्हीं के शब्दों में,

''भूमंडलीकरण और अनौपचारीकरण के दौर में मजदूर वर्ग के संघर्ष और प्रतिरोध के नये रूपों को इजाद करने का कार्यभार एक चुनौती पूर्ण कार्यभार है। इसे निभाने के लिए हमें हर प्रकार के अर्थवादी, अराजकतावादी और कठमुल्लावादी नजरिये से निजात पानी होगी, पूंजीवाद की कार्यप्रणाली और मजदूर वर्ग की संरचना और प्रकृति में आये बदलावों को समझना होगा, पूंजी द्वारा श्रम के विरु(अपनाई गई रणनीतियों को समझना होगा, इसके बिना हम मजदूर वर्ग के प्रतिरोध के नये रूपों और रणनीतियों का रचनात्मक तरीके से निर्माण नहीं कर सकते।''

इन लोगों ने अपनी बातों को अपने द्वारा आयोजित एक सेमिनार में विस्तार से प्रतिपादित किया। इसमें उन्होंने अपने द्वारा पहले टुकड़ों–टुकड़ों में कही जा रही बातों को मुकम्मल रूप दिया और विकसित किया। इस कारण इनके सिद्धान्त की प्रकृति भी और ज्यादा मुखर होकर सामने आ गई।

इस लेख में हम उनके द्वारा प्रस्तुत प्रमुख पेपर 'भूमण्डलीकरण के दौर में मजदूर वर्ग के आंदोलन और प्रतिरोध के नये रूप और रणनीतियां' में कही गई बातों के आधार पर इनके नये सिद्धान्त की समीक्षा करेंगे और दिखायेंगे कि कैसे ये लोग मार्क्सवाद की सामान्य और सर्वमान्य सिद्धान्तों व धारणाओं को विकृत या खारिज करते हुए देश–दुनिया के मजदूर आंदोलन के लिए एक एन.जी.ओ. मार्का रणनीति प्रस्तावित कर रहे हैं ये फुटलूज **(Footloose)** सट्टेबाज पूंजी के जमाने के फुटलूज क्रांतिकारियों के फुटलूज सिद्धान्त हैं।

I साम्राज्यवाद की नयी थीसिस

अपने फुटलूज सिद्धान्त को मुकम्मल रूप देने के प्रयास में इन फुटलूज क्रातिकारियों ने लेनिन की साम्राज्यवाद की अवधारणा को छोड़कर अपनी नयी अवधारणा प्रस्तुत की है जो अपने सारतत्व में काउत्स्की की अवधारणा से मिलती है। आइये देखें ये क्या कहते हैं :

''1870 के दशक में विश्व पूंजीवाद को अपने पहले गंभीर संकट का सामना करना पड़ा। यह संकट था राष्ट्रीय सीमाओं के भीतर पूंजी संचय की प्रचुरता का संकट। वास्तव में यह वही अति उत्पादन का संकट था जिसे मार्क्स पूंजी का अंतकारी संकट बताते हैं। उपनिवेशवाद के दौर में दुनिया भर की लूट के कारण उन्नत औद्योगिक पूंजीवादी देशों मे अति उत्पादन का संकट और पूंजी के प्रचुरता का संकट पैदा हुआ। अब इस पूंजी का राष्ट्रीय सीमाओं के भीतर उत्पादक निवेश नहीं हो सकता था। इस संकट के कारण मजदूर वर्ग को भयंकर बेरोजगारी, गरीबी और महंगाई का सामना करना पड़ा और नतीजतन नंस, इंग्लैण्ड और यूरोप के अन्य देशों से लेकर अमेरिका तक में मजदूर वर्ग के शानदार आंदोलन हुए। सर्वहारा वर्ग ने बड़े पैमाने पर राजनीतिक रूप से सचेत आंदोलन किये। लेकिन शैशवावस्था में ही पूंजी की ताकत को चुनौती देने का काम करने वाले इस उदीयमान सर्वहारा वर्ग के लिए ये आंदोलन सीखने की पाठशाला बने, हालांकि वे कोई टिकने वाली सर्वहारा की सत्ता कायम न कर सके। ***मजदूर आंदोलन के इस हमले के बाद और मुनाफे की दर के खतरनाक हदों तक गिरने के संकट से निपटने के लिए पूरे विश्व पूंजीवाद को अपनी पूरी कार्यप्रणाली में कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तन करने पड़े।*** इन्हीं परिवर्तनों का अध्ययन लेनिन ने किया और वित्तीय एकाधिकारी पूंजीवाद के उदय को साम्राज्यवाद की संज्ञा दी। ***लेनिन ने बताया कि इस दौर मे पूंजी को राष्ट्रीय सीमाओं से बाहर विस्तार की जरूरत थी जो वित्तीय पूंजी (यानी बैंक और औद्योगिक पूंजी का विलय) के जरिये ही संभव था।*** वित्तीय पूंजी के उद्भव के साथ यूरोप में विशालकाय बैंकों, ज्वाइंट स्टॉक कंपनियों और कार्टेलों का उदय हुआ। माल–पूंजी का निर्यात कोई नयी चीज नहीं था यह लम्बे समय से मौजूद था, लेकिन यह युग मुद्रा–पूंजी के निर्यात का साक्षी बना और आने वाले दो–तीन दशकों में यह इस हद तक बढ़ा कि उस युग की आम प्रवृत्ति बन गया।'' (शब्दों पर जोर हमारा)

कोई यह न सोचे कि यहां बात कहने के ढंग के कारण बातें कुछ टेढ़ी–मेढ़ी हो गई हैं। हम इस सेमिनार में प्रस्तुत एक दूसरे पेपर (विश्व पूंजीवाद की संरचना एवं कार्यप्रणाली में बदलाव तथा भारत का मजदूर आंदोलन : क्रांतिकारी पुनरुत्थान की चुनौतियां) से एक छोटा सा उद्धरण दे रहे हैं जो इन्ही बातों को दूसरे रूप में कहता है :

''पूंजी के अंतर्राष्ट्रीय प्रवाह की लगातार तेज होती गति ने ही पूंजीवाद को साम्राज्यवाद की अवस्था तक पहुंचाया जो विश्व बाजार के निर्माण और उस पर वित्तीय पूंजी के प्रभुत्व का युग था। लेनिन ने इस युग की अभिलाक्षणिक विशेषताओं को इस प्रकार सूत्रब(किया : 1ण माल के निर्यात के साथ–साथ पूंजी का निर्यात होना और इस प्रवृत्ति का अधिक महत्वपूर्ण बन जाना, 2ण उत्पादन और वितरण का विशाल ट्रस्टों में केन्द्रीकृत हो जाना, 3ण बैंकिंग और औद्योगिक पूंजी का आपस में घुल–मिल जाना 4ण पूंजीवादी शक्तियों द्वारा पूरी दुनिया को अपने–अपने प्रभाव क्षेत्रों में बांट लेना, 5ण इस विभाजन के पूरा हो जाने के बाद, दुनिया के बाजार को फिर से बंटवारे के लिए अंतर साम्राज्यवादी संघर्ष।''

बात शुरू करने के लिए आईये हम पहले लेनिन की साम्राज्यवाद की परिभाषा को ही उद्धृत कर दें,

''हमें साम्राज्यवाद की ऐसी परिभाषा देनी चाहिए जिसमें उसकी निम्नलिखित पांच बुनियादी विशेषताएं आ जाये : (1) उत्पादन तथा पूंजी का संकेन्द्रण विकसित होकर इतनी ऊंची अवस्था में पहुंच गया है कि उसने इजारेदारियों को जन्म दिया है जिनकी आर्थिक जीवन में एक निर्णायक भूमिका है, (2) बैंक पूंजी और औद्योगिक पूंजी मिलकर एक हो गई हैं और इस ''वित्त पूंजी'' के आधार पर वित्तीय अल्पतंत्र की सृष्टि हुयी है, (3) माल निर्यात से भिन्न पूंजी के निर्यात ने असाधारण महत्व धारण कर लिया है, (4) अंतर्राष्ट्रीय इजारेदार पूंजीवादी संघों का निर्माण हुआ है, जिन्होंने दुनिया को आपस में बांट लिया है और (5) सबसे बड़ी पूंजीवादी ताकतों के बीच दुनिया का क्षेत्रीय बंटवारा पूरा हो गया है। साम्राज्यवाद पूंजीवाद के विकास की वह अवस्था है जिसमें पहुंचकर इजारेदारियों तथा वित्त पूंजी का प्रभुत्व दृढ़ रूप से स्थापित हो चुका है, जिसमें पूंजी का निर्यात अत्यधिक महत्व ग्रहण कर चुका है, जिसमें अंतर्राष्ट्रीय ट्रस्टों के बीच दुनिया का बंटवारा आरंभ हो गया है, जिसमें सबसे बड़ी ताकतों के बीच पृथ्वी के समस्त क्षेत्रों का बंटवारा पूरा हो चुका है।'' (लेनिन, साम्राज्यवाद पूंजीवाद की चरम अवस्था, संकलित रचनाएं दस खंडों में, प्रगति प्रकाशन मास्को, 1982, खण्ड.5, पृष्ठ.310.311)

कोई भी पूछ सकता है कि अखिर ये लोग लेनिन के नाम पर वह सूत्रीकरण क्यों पेश कर रहे हैं जो लेनिन के असली सूत्रीकरण से भिन्न है? आखिर लेनिन के सूत्रीकरण को जस का तस उद्धृत कर देने से उन्हें परहेज क्यों है? इसका उत्तर यह है कि तब वे बाद में अपना नया सिद्वान्त पेश नहीं कर पाते।

इनके द्वारा प्रस्तुत साम्राज्यवाद की अवधारणा में कार्य कारण संबंध वह नहीं है जो लेनिन की अवधारणा में है। ये खुलेआम कहते हैं कि 'मजदूर आंदोलन के इस हमले के बाद और मुनाफे की दर के खतरनाक हदों तक गिरने के संकट से निपटने के लिए पूरे विश्व पूंजीवाद को अपनी पूरी कार्यप्रणाली में कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तन करने पड़े।' इन्हीं का परिणाम था साम्राज्यवाद!

इनके अनुसार उपनिवेशवाद के दौर में दुनिया भर की लूट के कारण पूंजीवादी देशों में 1870 के दशक में अति उत्पादन और पूंजी की प्रचुरता का संकट पैदा हो गया। इसके चलते मजदूर वर्ग को भयंकर गरीबी, बेरोजगारी और महंगाई का सामना करना पड़ा। इससे मजदूर वर्ग ने संगठित होकर संघर्ष किया। तब मजदूर वर्ग के इस हमले और पूंजी की प्रचुरता के संकट से निपटने के लिए पूंजीपति वर्ग ने पूंजीवाद की कार्यप्रणाली में परिवर्तन किया। इनमें सबसे महत्वपूर्ण था वित्तपूंजी या मुद्रा पूंजी का निर्यात। इसके लिए उन्होंने औद्योगिक और बैंकिंग पूंजी को मिलाया तथा ट्रस्टों और कार्टेलों का निर्माण किया। इस तरह पूंजीपति वर्ग ने पूंजीवाद को छोड़कर साम्राज्यवाद को अपना लिया।

साम्राज्यवाद की इस अवधारणा में साम्राज्यवाद का उदय पूंजीवाद के अति उत्पादन और पूंजी की प्रचुरता के संकट से निपटने के लिए पूंजी के निर्यात की जरूरत से दृढ़ता से गुंथा हुआ है। यह अवधारणा कम से कम लेनिन की अवधारणा से जरा भी मेल नहीं खाती। यदि इसका कोई मेल है तो रोजा लग्जमबर्ग की साम्राज्यवाद की अवधारणा से (जहां तक संकट से निपटने का संबंध है) या काउत्स्की की अवधारणा से (जहां तक पूंजीपति वर्ग द्वारा अपनी कार्यप्रणाली में परिवर्तन का संबंध है)।

लेनिन इन सबसे बिलकुल उलट साम्राज्यवाद को पूंजीवाद के वस्तुगत विकास के अपरिहार्य परिणाम के तौर पर देखते हैं। उन्हें 'पूंजीवाद का साम्राज्यवाद में विकास के बरक्स मेंशेविकों द्वारा 'पूंजीवाद का साम्राज्यवाद में रूपान्तरण' प्रस्तुतीकरण भी स्वीकार नहीं था। लेनिन कहते हैं :

> ''साम्राज्यवाद का उदय आम तौर से पूरे पूंजीवाद की मूलभूत लाक्षणिकताओं के विकास तथा सीधे अनुक्रम की एक कड़ी के रूप में हुआ। परन्तु पूंजीवाद अपने विकास की एक निश्चित तथा अत्यंत ऊंची मंजिल में पहुंचकर ही पूंजीवादी साम्राज्यवाद का रूप धारण कर सका, ऐसी मंजिल में पहुंचकर जब उसकी चंद मूलभूत लाक्षणिकताएं अपने प्रतिपक्षों में परिवर्तित होने लगी, जब एक उच्चतर सामाजिक आर्थिक अवस्था में पूंजीवाद के संक्रमण के युग की रूपरेखा बन और हर जगह उजागर हो चुकी थी। आर्थिक दृष्टि से इस प्रक्रिया की मुख्य बात यह है कि पूंजीवादी इजारेदारी ने खुली पूंजीवादी होड़ का स्थान ले लिया। खुली होड़ पूंजीवाद और आम तौर पर माल उत्पादन की मूलभूत लाक्षणिकता है, इजारेदारी खुली होड़ का बिलकुल प्रतिपक्ष है, परन्तु हम अपनी आंखों से देख चुके हैं कि खुली होड़ इजारेदारी में रूपान्तरित होती जा रही है, वह बड़े उद्योगों को जन्म दे रही है और छोटे उद्योगों को बाहर धकेल रही है, बड़े पैमाने के उद्योग के स्थान पर और भी बड़े पैमाने के उद्योग स्थापित कर रही है और उसने उत्पादन तथा पूंजी के संकेन्द्रण को इस हद तक पहुंचा दिया है कि उसमें से इजारेदारी कार्टेलों, सिंडिकेटों तथा ट्रस्टों का जन्म हुआ है और हो रहा है और इनमें उसने लगभग एक–आध दर्जन ऐसे बैंको की पूंजी को मिला दिया है, जो अरबों का हेर–फेर करते हैं। इसके साथ ही इजारेदारियां, जो खुली होड़ से पैदा हुयी हैं, इस खुली होड़ को खत्म नहीं करती, बल्कि उसके ऊपर और उसके साथ कायम रहती हैं और इस प्रकार अनेक बहुत तीव्र तथा गहरे विग्रहों, संघर्षों और झगड़ों को जन्म देती है। पूंजीवाद का एक उच्चतर अवस्था में संक्रमण इजारेदारी है।
>
> ''यदि साम्राज्यवाद की यथासंभव संक्षिप्ततम परिभाषा करनी हो, तो हम कहेंगे कि पूंजीवाद की इजारेदाराना अवस्था साम्राज्यवाद है। ... ...'' (लेनिन वही, पृष्ठ.309.310)

पूंजीवाद का इजारेदारी की अवस्था में पहुंचना पूंजीवाद या पूंजीपति वर्ग की किसी रणनीति का परिणाम नहीं है, यह उसके द्वारा अपनी कार्यप्रणाली में किसी परिवर्तन का परिणाम नहीं है। पूंजीवाद खुली होड़ की व्यवस्था है और यह खुली होड़ ही अपने विकास क्रम में इजारेदारी को जन्म देती है। इसीलिए लेनिन कहते हैं कि इजारेदारी पूंजीवाद का एक उच्चतर अवस्था में संक्रमण है। यह पूंजीवाद का साम्राज्यवाद में रूपान्तरण भी नहीं है, यह पूंजीवाद का साम्राज्यवाद में विकास है।

1873 से पैदा हुए लम्बे संकट ने साम्राज्यवाद के उदय में योगदान दिया था लेकिन वित्तपूंजी के निर्यात की जरूरत पैदा करके और इसके लिए ट्रस्टों और कार्टेलों का निर्माण करके नहीं। पूंजीवाद के सभी संकटों की तरह इस लम्बे संकट ने भी छोटे और मध्यम उद्यमों को तबाह कर पूंजी के संकेन्द्रण को त्वरित किया। इस संकेन्द्रण ने इजारेदारियों के जन्म में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इजारेदारियों ने सिंडिकेटों, कार्टेलों और ट्रस्टों का रूप धारण किया। इन सबके फलस्वरूप विशालकाय औद्योगिक उद्यमों और बैंको का जन्म हुआ और इनकी पूंजी का आपस में विलय हो जाने से वित्त पूंजी का। इस भीमकाय वित्त पूंजी ने तब अधिकाधिक मालों के निर्यात के ऊपर प्रमुखता ग्रहण कर ली।

1870 से 1900 के बीच में खुली होड़ के स्थान पर इजारेदारियों का उदय और मजदूर संगठनों, मजदूर पार्टियों तथा मजदूर संघर्ष का उदय लगभग समानान्तर परिघटना है। वास्तव में 1871 का पेरिस कम्यूर 1873 के संकट के पहले ही कायम हुआ था। इसलिए यह कहना तथ्यतः सही नहीं है कि मजदूर संगठनों और संघर्षों से निपटने के लिए पूंजीपति वर्ग ने अपनी कार्यप्रणाली में परिवर्तन किये। और न ही इजारेदारियों और साम्राज्यवाद के उदय से मजदूर आंदोलन समाप्त हो गया। हां, यह जरूर हुआ कि मुट्ठीभर साम्राज्यवादी देशों द्वारा अतिलाभ की लूट के एक हिस्से से मजदूर आंदोलन के ऊपरी हिस्से को अभिजात बनाकर भ्रष्ट कर देना संभव हो गया, वही चीज जो अंग्रेजी पूंजीपति वर्ग पहले से कर रहा था। मजदूर आंदोलन बढ़ता गया, फैलता गया, व्यापक होता गया लेकिन अपने अभिजात नेतृत्व के भ्रष्ट हो जाने के कारण अधिकाधिक पालतू बन गया। साम्राज्यवाद के कारण पूंजीपति वर्ग के लिए यह संभव हुआ कि वह बढ़ते–फैलते मजदूर आंदालन के नेतृत्व को खरीदकर भ्रष्ट कर दे, मजदूर आंदोलन को समाप्त करने के लिए पूंजीपति वर्ग ने साम्राज्यवाद को पैदा नहीं किया।

इस सबके उलट सोचना काउत्स्की वाद है जिसके अनुसार साम्राज्यवाद एक निश्चित नीति है जिसे वित्त पूंजी तरजीह देती है। लेकिन साम्राज्यवाद की लेनिन की सर्वमान्य प्रस्थापनाओं के स्थान पर ये लोग ऐसी बातें क्यों कह रहे हैं जो वस्तुतः काउत्स्कीवादी है? इसका उत्तर यह है कि इसके द्वारा वे एक समानान्तर चित्र उपस्थित कर आज के मजदूर आंदोलन के बारे में अपने फुटलूज सिद्वान्तों को पुख्ता जमीन प्रदान करना चाहते हैं। वे कहते है :

> ''लेकिन जल्दी ही समृ(का यह दौर समाप्त हो गया। तीन दशक बीतते–बीतते पूंजी संचय संतृप्ति की अवस्था में पहुंचने लगा था। राष्ट्रीय सीमाओं के भीतर पूंजी की प्रचुरता को खपाना अब संभव नहीं हो पा रहा था। अति उत्पादन का संकट एक बार फिर पूंजीवाद के सामने मुंह बाये खड़ा था। 1970 आते–आते पूरे पूंजीवादी विश्व में मुनाफे की दर ठहराव ग्रस्त हो चुकी थी। पूंजी की गति का राष्ट्रीय सीमाओं के भीतर अब दम घुटने लगा था। जल्दी ही संकट अपने चरम पर पहुंच गया। इसे हम 1973 के संकट से रूप में जानते हैं। ... ... इन सबके पीछे जो कारण मौजूद था वह था पूंजी की प्रचुरता, अति उत्पादन और मुनाफे

की दर का उत्तरजीविता के न्यूनतम स्तर से नीचे जाना। ... ... श्रम बाजारों के लचीला न होने, यानी कि मजदूर वर्ग को श्रम कानूनों के जरिये मिलने वाली सापेक्षिक सुरक्षा के कारण मजदूर वर्ग के शोषण को और बढ़ा कर मुनाफे की दर को उत्तरजीविता योग्य बनाना संभव नहीं था। मौजूदा संचय के प्रभुत्वशाली रूप और विनिमय के प्रभुत्वशाली रूप के रहते ऐसे किसी भी प्रयास को मजदूर वर्ग के जबर्दस्त संगठित प्रतिरोध का सामना करना पड़ता।

''जब सारे प्रयास विफल हो गये तब पूंजीवादी विश्व के चिंतक–बुद्धिजीवी पूरी पूंजीवादी व्यवस्था में संरचनात्मक परिवर्तन के बारे में सोचने लगे। नयी रणनीतियों पर चिंतन शरू हो गया जो कुछ वर्षों तक जारी रहा। ... ... 1980 के दशक की शुरुआत के साथ विश्व में भूमंडलीकरण और नवउदारवाद की आर्थिक नीतियों के पहले प्रयोग शुरू हुए।''

इसे ही ये लोग विश्व पूंजीवाद की वर्तमान कार्य प्रणाली में परिवर्तन कहते हैं। यहां इनके द्वारा प्रस्तुत : 1870.90 के दशकों और 1970.90 के दशकों के बीच समान्तर तुल्यता गहन रूप से स्पष्ट है। यही नहीं वे एक कदम आगे बढ़कर खुले आम कह भी देते हैं :

''हम कह सकते हैं कि लेनिन ने साम्राज्यवाद को पूंजीवाद की चरम अवस्था कहा था, तो ***भूमंडलीकरण को साम्राज्यवाद की अंतिम मंजिल कहा जा सकता है।***'' (जोर मूल में)

वाह! नये लेनिन पैदा हो चुके हैं, महान और एतिहासिक लेनिन को विकृत और खारिज करते हुए!!

विश्व पूंजीवाद ने अपनी कार्य प्रणाली में एक परिवर्तन 1870.90 के दशकों में किये और एक अन्य 1970.90 के दशकों में। पहले का परिणाम हुआ साम्राज्यवाद, दूसरे का भूमंडलीकरण और नवउदारवाद। अब इसके बाद भी क्या किसी को शक हो सकता है कि ये लोग साम्राज्यवाद के उदय को पूंजीवाद का साम्राज्यवाद में विकास नहीं देखते बल्कि उसे विश्व पूंजीवाद की एक नीति समझते है? क्या ये खुलेआम भूमंडलीकरण और नवउदारवाद की आर्थिक नीतियों की बात नहीं कर रहे हैं?

लेनिन को विकृत कर और लेनिन तथा साम्राज्यवाद के उदय के इतिहास से अपने लिए वैधानिकता हासिल करने का प्रयास करने वाले ये फुटलूज सिद्वान्तकार ये नहीं देखते कि ये कितनी विरोधाभासी बात कर रहे हैं। 1870 के दशक में भी पूंजीवाद पूंजी की प्रचुरता, मुनाफे की गिरती दर और मजदूर संघर्षों से परेशान था। और 1970 के दशक में भी। लेकिन 1970 के दशक में जो मजदूर आंदोलन था (ट्रेड यूनियन और मजदूर पार्टियां) वह अपने चरित्र में वही था जो साम्राज्यवाद के उदय के साथ, बीसवीं सदी की शुरुआत में अस्तित्व में आया व्यापक मजदूर आंदोलन लेकिन नेतृत्व के स्तर पर पालतू। इस भ्रष्ट और पालतू मजदूर आंदोलन को तोड़ने के लिए विश्व पूंजीवाद ने 1970.90 के दशकों में नीतियां बनाईं और प्रयास किये। इसके बरक्स 1870.90 के दशकों में ऐसा मजदूर आंदोलन क्रमशः अस्तित्व में आया। ये फुटलूज सिद्वान्तकार इतिहास की इस सच्चाई को अपनी ऐतिहासिक तुल्यता में सुविधापूर्वक भुला देते हैं। ऐतिहासिक तथ्यों के साथ ऐसा सुविधापूर्ण व्यवहार फुटलूज सिद्वान्त की विशेषता है जिसके नमूने हम आगे भी देखेंगे।

II संगठन और प्रतिरोध के नये रूप और रणनीतियां

साम्राज्यवाद की अपनी नयी थीसिस देने के बाद ये लोग मजदूर वर्ग की संरचना में बदलाव पर आते हैं और अपनी नयी धारणा पेश करते हैं। ये कहते हैं :

''मजदूर वर्ग के संघर्ष के संगठित होने की पुरानी लोकेशन अधिकांश मामलों में कारखाना या कार्यस्थल हुआ करती थी। आज के समय में, जैसा कि हम देख आये हैं, मजदूर वर्ग के 93 प्रतिशत हिस्से को काम करने की जगह के आधार पर पूंजी ने बिखराया है। हमने उन आंकड़ों का जिक्र किया था जो बताते हैं कि आज देश की सभी मैनुफैक्चरिंग इकाइयों में से 80 फीसदी के करीब ऐसी इकाइयां हैं जिनमें 50 से भी कम मजदूर काम करते हैं। जिन 20 प्रतिशत मैनुफैक्चरिंग इकाइयों में 50 से अधिक मजदूर काम करते हैं उनमें भी अधिकांश मजदूर अब स्थाई, कैजुअल, दिहाड़ी या ठेका मजदूर के रूप में काम करते हैं। ऐसे में कारखाने की कार्यशक्ति का प्रोफाइल बेहद अस्थिर (वोलाटाइल) होता जा रहा है। नतीजतन, मजदूर यूनियनों को कारखानों को आधार बनाकर संगठित करने का कार्य बेहद मुश्किल होता जा रहा है। अगर ऐसी यूनियनें बन भी जाती हैं तो उनकी ताकत अधिकांश मामलों में सीमित होती है। श्रम कानूनों के ढीले होते जाने के कारण उनकी ताकत और भी कम हुयी है। पिछले दो दशकों के दौरान अधिकांश कारखाना संघर्षों में मजदूर वर्ग को पहले के मुकाबले कहीं अधिक मामलों में पराजय का सामना करना पड़ा है। ... ...''

उपरोक्त में दो चीजों पर जोर है : एक, अधिकांश मजदूर छोटी–छोटी इकाईयों मे काम करते हैं। पूंजीपति ने उन्हें बड़े–बड़े कारखानों से छोटी–छोटी इकाईयों में बिखरा दिया है। दूसरा, बड़े कारखानों में भी अब ज्यादातर मजदूर स्थाई के बदले कैजुअल और अस्थाई हैं। यदि कोई व्यक्ति छोटे कारखानों पर सवाल उठाता है तो उसके लिए इनका यह जवाब है :

'' हम देख आये हैं कि पूंजी ने अपने आर्थिक और राजनीतिक हितो के मद्देनजर मजदूर आबादी को कारखाना या कार्यस्थल के स्तर पर किस तरीके से विसंगठित किया है। यह एक तथ्य है जिसे आज कोई इंकार नहीं कर सकता। पैफक्टरी–फ्रलोर संघर्ष के साथ अपने भावनात्मक हैंगओवर के चलते कोई बीस उदाहरण दे सकता है जिसमें वह बता सकता है कि फलां–फलां जगहों पर आज के समय में भी विशाल कारखाना लग रहा है। हम उससे सिर्फ इतना ही कहेंगे कि निश्चित रूप से कई जगहों पर आज भी बड़े कारखाने लग रहे हैं या चल रहे हैं। लेकिन हम दो बातों की ओर इशारा करना चाहेंगे। पहली बात तो यह है कि यह आम रुझान है या नहीं है इसका फैसला पूरे देश के पैमाने पर मौजूद आंकड़ों से किया जाना चाहिए। ***मैनुफैक्चरिंग इकाइयों का औसत आकार लगातार घटा है।*** दूसरी बात कि अगर ऐसा न भी हो तो कारखाने के आकार से कोई फर्क नहीं पड़ता है। हम जिस निर्धारक कारक की बात कर रहे हैं वह कारखाने का आकार नहीं है, वह तो एक सहायक तथ्य है जिससे हम अपने मुख्य तर्क का समर्थन करते हैं। एक पल को उसे किनारे भी कर दिया जाय तो मुख्य बात बड़े कारखानों के भीतर भी श्रम का अनौपचारीकरण है जो कारखाना आधारित संघर्षों को न्यूनातिन्यून बनाता जा रहा है। यह आज एक तथ्य है कि कार्यस्थल पर मजदूर वर्ग को पूंजी ने पिछले दो दशकों में लगातार विसंगठित किया है। ... ... '' (जोर मूल में)

इस स्थिति से निकलने का क्या रास्ता है?

''आधुनिक, विशेष रूप से भूमंडलीकरण के दौर में होने वाले पूंजीवादी विकास, मजदूर वर्ग को उसकी रिहायश की जगह के आधार पर कभी विसंगठित नहीं कर सकता। ... ... ''

''मजदूर आंदोलन के लिए ये रिहायशी क्षेत्र संभावना के जबरदस्त स्रोत हैं। ...''

यह है इन लागों द्वारा चिर्त्रित मजदूर वर्ग की संरचना में बदलाव और उससे निकलने वाले निष्कर्ष।

हम पहले ही कह आये हैं कि इन फुटलूज क्रांतिकारियों के फुटलूज सिद्वान्त की यह विशेषता है कि ये तथ्यों के बारे में सुविधापूर्ण रुख ग्रहण करते हैं। इन्होंने अपने पेपर में एक बड़ा हिस्सा इस बात पर खर्च किया है कि आज वैश्विक असेम्बली लाइन विखर गई है और पहले के विशाल कारखानों के बदले अब छोटे–छोटे कारखाने अस्तित्व में आये हैं क्योंकि बड़े–बड़े फोर्डिस्ट असेम्बली लाइन के कारखाने

मजदूर संगठनो और संघर्षों के गढ़ बन गये थे। मजे की बात यह है कि इन्होंने देश और दुनिया के ऐसे कोई आंकड़े नहीं दिये जिससे कारखानों के आकार में बदलाव का पता चलता हो। इन्होंने बस दावे किये। आंकड़ों से भरे पेपर में यह बात काबिलेगौर है।

लेकिन आगे की बात तो इससे भी ज्यादा मजेदार है। वैश्विक असेम्बली लाइन के बिखर जाने और कारखानों के आकार के छोटा हो जाने के सारे झमाझम के बाद ये कि 'कारखाने के आकार से कोई फर्क नहीं पड़ता है। हम जिस निर्धारक कारक की बात कर रहे हैं वह कारखाने का आकार नहीं है, वह तो एक सहायक कारक है जिससे हम अपने मुख्य तर्क का समर्थन करते हैं।' खुदा ही जानता है कि तब फिर वैश्विक असेम्बली लाइन के बिखर जाने का इतना हंगामा क्यों? यदि बात केवल बड़े कारखानों में ठेकाकरण और कैजुअलाइजेशन की है तो यह असेम्बली लाइन के बिखराव के बिना भी हो सकता है और हो रहा है। लेकिन ऐसा होने पर कार्यस्थल पर 'विसंगठन' की बात अपनी धार खोने लगती है। 'मजदूर वर्ग को रिहायश की जगह के आधार पर कभी विसंगठित नहीं किया जा सकता' को यदि महत्वपूर्ण बनाना है तो असेम्बली लाइन के बिखराव और कारखानों के छोटा होने की बात को करना ही पड़ेगा भले ही इसके लिए कोई आंकड़े न दिये जाये।

इन लोगों के दावों में कई खम–पेंच हैं। आइये इसे देखें। पहली बात तो यह है कि औद्योगिक उत्पादन में मैनुफैक्चरिंग और वह भी असेम्बली लाइन आधारित मैनुफैक्चरिंग केवल एक हिस्सा है। धातु अयस्कों के परिशोधन और उच्च गुणवत्ता की धातुओं के परिशोधन से रसायन उद्योग तक ऐसे उद्योग हैं जो न तो असेम्बली लाइन पर आधारित हैं और न जिन्हें छोटे–छोटे कारखानों में बिखराया जा सकता है। भारी उद्योगों की इन महत्वपूर्ण शाखाओं को केवल अवरचनागत उद्योगों का हवाला देकर टरकाया नहीं जा सकता। स्वयं मैनुफैक्चरिंग में भी रेलें, वायुयान, पानी के जहाज से लेकर इसी तरह की बड़ी मशीनों के बारे में असेम्बली लाइन के बिखराव की बात बेमानी हो जाती है। इस तरह असेम्बली लाइन के बिखराव की बात यदि वास्तव में कोई मायने रखती है तो वह कल–पुर्जों की आउटसोर्सिंग तथा उपभोक्ता सामानों की मैनुफैक्चरिंग के मामले में। लेकिन यहां भी दो बातें दृष्टव्य हैं।

पहली बात तो यह है कि कल–पुर्जों की आपूर्ति करने वाले छोटे–छोटे उद्यमों का तथा उनमें काम करने वाले मजदूरों का अस्तित्व वस्तुतः मूल, बड़ी कंपनी पर निर्भर करता है। दूसरा यह कि इसके द्वारा छोटे–छोटे उद्यमों में काम करने वाले मजदूर पहले से कहीं ज्यादा बड़े पैमाने पर एक–दूसरे से और बड़े उद्यमों के मजदूरों के साथ बंध जाते हैं। जिसे वैश्विक असेम्बली लाइन का बिखरना कहा जा रहा है वह वास्तव में सारी दुनिया के पैमाने पर उत्पादन और वितरण का विकेन्द्रीकृत केन्द्रीकरण है। सारी दुनिया के पैमाने पर उत्पादन और वितरण के इस विकेन्द्रीकृत केन्द्रीकरण में केवल बिखराव को देखना और केन्द्रीकरण को न देखना गलत निष्कर्षों तक ही ले जायगा। इस विकेन्द्रीकृत केन्द्रीकरण ने सारी दुनिया के पैमाने पर मजदूरों को उत्पादन और वितरण की प्रक्रिया में एक–दूसरे के साथ पिरोया है तथा उनके संगठन और संघर्ष का वैश्विक आधार तैयार किया है। आज जरूरत इस बात की है कि इस पर अपने को आधारित कर सारी दुनिया के पैमाने के संगठन और संघर्ष विकसित करने के रास्ते और तौर–तरीके निकाले जाये। संचार के जिन साधनों ने पूंजीपति वर्ग के लिए इस विकेन्द्रीकृत केन्द्रीकरण को अंजाम देना संभव किया है वे ही हमारे लिए भी वैश्विक पैमाने के संगठन और संघर्ष खड़े करना संभव बनायेंगे। इसके बदले बिखराव पर स्वयं को केन्द्रित कर रिहायशी इलाकों में सिमट जाना वही चीज होगी जो पूंजीपति वर्ग बेइंतहा चाहता है और जिसे गैर सरकारी संगठनों के माध्यम से प्रोत्साहित कर रहा है। पूंजीवाद भूमंडलीकरण की नीति पर चल रहा है और फुटलूज क्रांतिकारी है कि स्थानीय तौर पर रिहायशी इलाकों में सिमट रहे हैं यह नारा देते हुए कि पूंजीपति वर्ग हमें यहां से विसंगठित नहीं कर सकता।

स्थानीयता का यह आरोप यूं ही नहीं है। रिहायशी इलाकों में चाहे इलाकाई या पेशा आधारित यूनियनें बनाई जाये या चाहे नागरिक समस्याओं पर संगठन ये उस इलाके के उद्यमों के मजदूरों को भले समेटें, वे विकेन्द्रीकृत केन्द्रीकरण के तहत उत्पादन और वितरण के सूत्र में बंधे देश और दुनिया के मजदूरों को आपस में एकता के सूत्र में नहीं बांध सकते। यह केवल इन उद्यमों पर आधारित, कारखाना आधारित संगठनों के जरिये ही हो सकता हैं यदि पूंजीपति वर्ग विकेन्द्रीकृत केन्द्रीकरण के जरिये तात्कालिक तौर पर मजदूर वर्ग को विसंगठित और हतप्रभ करने में कामयाब हो गया है तो इसकी काट भी यहीं से होगी। इसके बदले असेम्बली लाइन के बिखराव की थीसिस रिहायशी इलाकों में गैर सरकारी संगठन मार्का ढंग से सिमटने की ओर ले जायगी।

लेनिन की साम्राज्यवाद की अवधारणा में इजारेदारी का केन्द्रीय महत्व है। यह आश्चर्य की बात नहीं है कि इन फुटलूज क्रांतिकारियों ने ठीक इजारेदारी के सवाल को ही आंखों से ओझल कर दिया है। पूंजीवाद की इजारेदाराना प्रवृत्ति पिछले सौ सालों में लगातार बढ़ती गई है। यह आगे भी बढ़ती जायगी। अब सीधा सा सवाल पैदा होता है कि इस बढ़ती इजारेदारी का असेम्बली लाइन के बिखराव से क्या संबंध है? ये फुटलूज क्रांतिकारी यह सवाल उठाते भी नहीं। इजारेदारी के सवाल को आंखों से ओझल कर देने के बाद वे इस सवाल को उठा भी नहीं सकते। हकीकत यह है कि साम्राज्यवादी पूंजी ने विकेन्द्रीकृत केन्द्रीकरण के जरिये वैश्विक पैमाने पर अपनी इजारेदारी को और पुख्ता किया है। भारत में पहले लघु उद्यमों के लिए आरक्षित क्षेत्र को बड़ी पूंजी को खोल देना इसका एक उदाहरण मात्र है। सारी दुनिया के पैमाने पर बढ़ती यह इजारेदारी अपने प्रतिपक्ष के तौर पर मजदूरों के उतने ही बड़े पैमाने के संगठनों और संघर्षों का भौतिक आधार पैदा कर रही है। आपस में गुंथती जा रही देशी–विदेशी इजारेदार पूंजी को यहीं से चुनौती दी जा सकती है, छोटे–छोटे उद्यमों के मालिकों के खिलाफ संघर्ष से या रिहायशी इलाके संबंधित संघर्ष से नहीं।

कारखानों के आकार के सवाल को चुपके से छोड़कर मजदूरों के रिहायश की जगह को इस आधार पर इन लोगों ने संभावना के जबरदस्त स्रोत घोषित किया है कि मजदूरों को रिहायश की जगह में विसंगठित नहीं किया जा सकता जबकि ठेकाकरण और कैजुअलाइजेशन के कारण उसे फैक्टरियों में विसंगठित कर दिया गया है। इस संदर्भ में भी इन लोगों ने तथ्यों और तर्कों का काफी घालमेल किया है।

इनका कहना है कि **1940** के दशक में फोर्डिज्म असेम्बली लाइन पर आधारित कोर्डिज्म अस्तित्व में आया। **1945** से **1973** तक फोर्डिज्म विश्व पूंजीवादी संचय का प्रमुख रूप बना रहा। इस दौर में बड़े–बड़े कारखानों पर आधारित मजदूरों के संगठन थे और इन्होंने पूंजीपति वर्ग के मुनाफे की सीमा बांधी। **1973** के बाद के नवउदारीकरण के दौर में पूंजीपति वर्ग ने इसी संगठित मजदूर वर्ग को तोड़ा, विसंगठित किया और इसने यह किया असेम्बली लाइन को बिखरा कर।

लेकिन ऐतिहासिक सच्चाई यह है कि मजदूरो के बड़े–बड़े संगठन और पार्टियां फोर्डिज्म और फोर्डिज्म असेम्बली लाइन के बहुत पहले अस्तित्व में आ गये थे। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध की ब्रिटिश ट्रेड यूनियनों से लेकर दूसरे इंटरनेशनल के जमाने की मजदूर पार्टियां और संगठन मजदूरों के एक महत्वपूर्ण हिस्से को संगठित करने में कामयाब हुए थे। और जब ये अस्तित्व में आये तब तो आज के ज्यादातर श्रम कानून मौजूद नहीं थे। उन्होंने ही संघर्ष करके ये श्रम कानून बनवाए। यानी ये संगठन तब बने जब सारे ही मजदूर अस्थाई थे और कोई श्रम कानून भी नहीं थे। अपने सारे पीछे हटने के बावजूद मजदूर वर्ग अभी भी उन्नीसवीं सदी की स्थिति तक नहीं पहुंचा है। यहां यह भी महत्वपूर्ण है कि तब के उद्यम भी आज के मुकाबले छोटे थे, चेतना और संचार के साधनो की उपलब्धता का तो कहना ही क्या?

द्वितीय विश्व युद्धों के बाद साम्राज्यवादी देशों में जो 'कल्याणकारी राज्य' अस्तित्व में आये उसे बनाने और चलाने का अधिकांश काम दूसरे इंटरनेशनल की वारिस मजदूर पार्टियों ने किया, उन पार्टियों ने जो कब का पालतू बन चुकी थीं। ये 'कल्याणकारी राज्य' भी

1920 के दशक से अस्तित्व में आने लगे थे। 1930 के दशक की महामंदी, विश्व युद्वों, समाजवादी खेमे की उपस्थिति और कई साम्राज्यवादी देशों में मजबूत कम्युनिस्ट पार्टियों की मौजूदगी ने साम्राज्यवादी पूंजीपति वर्ग को मजबूर किया कि वह दूसरे विश्व युद्वों के बाद बड़े पैमाने पर 'कल्याणकारी राज्य' कायम करे। पालतू मजदूर पार्टियों और उनके नेतृत्व वाले मजदूर संगठनों ने इसमें मदद की। यह सब पूंजीपति वर्ग के लिए दूरगामी तौर पर फायदेमंद था। कालांतर में इसने कम्युनिस्ट पार्टियों के भी पालतू बन जाने का रास्ता खोला।

दुनिया के मजदूर आंदोलन का यह वास्तविक इतिहास इस निष्कर्ष की ओर नही ले जाता कि कारखानों में ठेकाकरण या कैजुअलाइजेशन बढ़ने के कारण कारखाना आधारित संगठनों और संघर्षों के बदले रिहायशी इलाकों में सिमटा जाय। यह दिखाता है कि मजदूर वर्ग को फिर से संगठित करने के लिए कारखानों के कार्यस्थल का केन्द्रीय महत्व उन्नीसवीं सदी में भी था, बीसवीं सदी में भी और अब भी है। केवल ऐतिहासिक निकट दृष्टि दोष ही इस चीज को देख पाने में बाधा बन सकता है।

जैसा कि हम देखेंगे, रिहायशी इलाकों के जबरदस्त महत्व की बात करते हुए इलाकाई ट्रेड यूनियनों और पेशा आधारित यूनियनो की बातें महज प्रासंगिक हैं। असल बात तो रिहायश के इलाकों में 'ज्यादा राजनीतिक' नागरिक सुविधाओं के मुद्दों पर संगठन और संघर्ष की है। जहां तक इलाकाई या पेशा आधारित ट्रेड यूनियनों की बात है वे पहले भी थीं और अब भी हैं। हर किसी के लिए यह सामान्य बात है। जहां कहीं संभव हो, इसके लिए हर कोई कोशिश करेगा। यह मजदूर आंदोलन की कोई नयी रणनीति नहीं होगी।

इन लोगों की रणनीति में यदि कुछ नया है तो छोटे कारखानों और रिहायशी इलाकों पर जोर और मजदूरों के लिए 'ज्यादा राजनीतिक' नागरिक सुविधाओं पर उन्हें संगठित करने की बात। और यहीं से गैर सरकारी संगठन मार्का राजनीति का मार्ग प्रशस्त होता है।

III मजदूर वर्ग की चेतना का सवाल

मजदूर वर्ग समांग नहीं है। इसके अलग–अलग हिस्से हैं। इसके कार्य और जीवन की परिस्थितियां अलग–अलग है और इसीतिए उजरती गुलामी की समानता के बावजूद इनकी चेतना अलग–अलग होती है। ठीक इसी कारण मजदूर वर्ग के भीतर भी इसका एक हिस्सा हरावल होता है तो दूसरा अपेक्षाकृत पिछड़ा। यहां तक कि मजदूरों के सबसे आगे बढ़े हुए हिस्से यानी औद्योगिक मजदूर वर्ग में भी यह हिरावल और पिछड़े हिस्से का विभाजन मौजूद रहता है।

कम्युनिस्टों के लिए यह मानी हुयी बात रही है कि खेतिहर मजदूरों के मुकाबले औद्योगिक मजदूर आगे बढ़ा हुआ होता है। औद्योगिक मजदूरों में भी देहाती इलाकों के बदले शहरी, कस्बाई और छोटे शहरों के बदले बड़े शहरों, छोटे औद्योगिक केन्द्रों के बदले बड़े औद्योगिक केन्द्रों तथा छोटी फैक्टरियों के बदले बड़ी फैक्टरियों के मजदूर ज्यादा आगे बढ़े हुए होते हैं। इसीलिए कम्युनिस्ट बड़े शहरों के बड़े औद्योगिक केन्द्रों की बड़ी फैक्टरियों पर अपना ध्यान केन्द्रित करते रहे हैं।

लेकिन अब ये फुटलूज क्रांतिकारी इस सबको बदल देना चाहते हैं। ये साबित करना चाहते हैं कि छोटी फैक्टरियों के, पिछड़े उद्योगों के मजदूर ज्यादा क्रांतिकारी है और वे ही मजदूर वर्ग के हरावल होंगे। जरा इन्हें सुनें :

> '' ... ... ब्रीमन गुजरात के अपने अध्ययन के आधार पर बताते हैं कि अनौपचारिक मजदूर आबादी वर्ग चेतना में किसी रूप में स्थाई कारखाना मजदूर से पीछे नहीं है। और हम इसमें जोड़ दें कि वह अपने जीवन के हालात से ही ज्यादा व्यवस्था विरोधी है।''
>
> '' ... ... अनौपचारिक क्षेत्र के तमाम अध्ययन बताते हैं कि इनमें काम करने वाले मजदूरों में विचारणीय रूप से वर्ग चेतना होती है जो कई मामलों में संगठित क्षेत्र में काम करने वाली मजदूर आबादी की वर्ग चेतना से अधिक उन्नत है।''
>
> '' दूसरी बात, यह मजदूर वर्ग मार्क्स और एंगेल्स के काल में भी पिछड़ा हुआ नहीं था, लेनिन के काल में भी नहीं और आज तो कतई नहीं। यह फोर्डिस्ट दौर में एकीकृत असेम्बली लाइन और मास प्रोडक्शन के दौर में पैदा हुए यूनियनवाद द्वारा बनाए गये पूर्वाग्रह हैं। इन पूर्वाग्रहों को तोड़ देने की जरूरत है कि अनौपचारिक/असंगठित मजदूर वर्ग पिछड़ी, आदिम, किसानी, पूर्व आधुनिक या अनौद्योगिक चेतना रखता है। आज के अनौपचारिक/ असंगठित मजदूर वर्ग के बारे में यह बात कहने वाला व्यक्ति निश्चित रूप से आज के अनौपचारिक मजदूर वर्ग से काफी हद तक अपरिचित है।''
>
> ''तीसरी बात, अनौपचारिक मजदूर वर्ग औपचारिक/संगठित क्षेत्र में काम करने वाले 7 प्रतिशत मजदूर वर्ग से आम तौर पर अधिक रेडिकल है, प्रकृति से ही पूंजीवाद–विरोधी है, संशोधनवादी ट्रेडयूनियनवादियों द्वारा फैलाऐ गए अर्थवाद, अराजकतावादी संघातिपत्यवाद और सुधारवाद से अपेक्षाकृत मुक्त है, यह मजदूर वर्ग अपनी गतिशीलता के कारण पेशागत संकुचन की प्रवृत्ति से भी अपेक्षाकृत मुक्त है और एक कारखाना मालिक को अपना शत्रु नहीं समझता बल्कि बिलकुल व्यावहारिक अर्थों में कारखाना मालिकों के पूरे वर्ग को अपने शत्रु के रूप में पहचानता है। इसका राजनीतिकरण अपेक्षाकृत आसान है। हां, यह जरूर है कि जिनका दिमाग पुराने ट्रेडयूनियनवादी अर्थवादी तौर–तरीकों में ही अश्मीभूत हो गया है, उनके लिए यह तर्क समझना थोड़ा मुश्किल होगा।''
>
> ''चौथी बात, इस वर्ग का साबका न सिर्फप पूंजीपति वर्ग से सीधे तौर पर पड़ता है, बल्कि हर रोज घर से लेकर सड़क और काम करने की जगह तक, इसका सीधा सामना पूंजीपति वर्ग की प्रबन्धन समिति का काम करने वाली सरकार से भी पड़ता है। यह पुलिस, नौकरशाही, न्यायपालिका और बुर्जुआ पार्टी के नेताओं के प्रति किसी कानूनी विभ्रम का शिकार नहीं होता। इसके सामने बुर्जुआ व्यवस्था के ये अंग हर दिन सबसे बर्बर रूप में नंगे होते हैं।''

यहां हम यह कह दें कि बड़ी फैक्टरियों में ठेके पर या अस्थाई रूप में काम करने वाले मजदूरों को ये भले अनौपचारिक मजदूरों की श्रेणी में रखें, उपरोक्त सारी बातें उनके बारे में नहीं हैं। बड़ी फैक्टरियों के इन मजदूरों की चेतना के बारे में किसी का सवाल नहीं है। सवाल तो छोटी–छोटी फैक्टरियों और पिछड़े उद्योगों का है। और इनकी अनौपचारिक और असंगठित मजदूरों के संबंध में सारी बातें इन्हीं मजदूरों के लिए हैं। यहां यह दृष्टव्य है कि मार्क्स और लेनिन का असंगठित क्षेत्र के मामले में लम्बा–चौड़ा हवाला देने के बावजूद उनकी चेतना के सबंध में इन्होंने एक भी उद्धरण नहीं दिया है। तरकश का यह तीर भला छिपा क्यों रखा है?

असल में बात इनके द्वारा प्रस्तुत धारणाओं की ठीक उल्टी है। कम्युनिस्टों के लिए मजदूरों के विभिन्न हिस्सों की चेतना के बारे में कुछ बातें पहले से सर्वमान्य रही हैं। और ये बातें फोर्डिस्ट असेम्बली लाइन या फोर्डिज्म के अस्तित्व में आने से बहुत पहले की हैं। इनका फोर्डिस्ट ट्रेडयूनियनों के पूर्वाग्रहों से कोई लेना–देना नहीं है। इस संबंध में हम सीधे लेनिन को उद्धृत करेंगे। लेनिन ने 1895.1904 और 1905.07 के काल की रूस की औद्योगिक हड़तालों का अध्ययन किया था (1905.07 रूस की पहली असफल क्रांति का काल था)। इन हड़तालों के अध्ययन में लेनिन ने मजदूरों के विभिन्न हिस्सों की भागीदारी को विशेष तौर पर रेखांकित किया था। इस अध्ययन से लेनिन ने ये कुछ निष्कर्ष निकाले :

> ''इस तरह स्पष्ट है कि राजधानियों सहित बड़े शहरी केन्द्रों ने इन सालों में अन्य स्थानों की अपेक्षा काफी ज्यादा ऊर्जा का प्रदर्शन किया। ... ... गावों और अपेक्षाकृत छोटे औद्योगिक केन्द्रों तथा शहरों में फैले हुए मजदूरों ने, जो कुल मजदूरों का आधा

है, **1895.1904** के काल मे हड़तालों का **40** प्रतिशत तथा **1905.07** के काल में केवल **25.30** प्रतिशत योगदान किया।'' **(V .I. Lenin, Strike Statistics in Russia, Collected Works,Vol-14, च.401,** अनुवाद हमारा)

''गावों के मजदूरों की तुलना में शहरों के फैक्टरी मजदूरों द्वारा हड़ताल आंदोलन में ***निभाई गयी भूमिका*** पहले के सालों के मुकाबले **1905** में काफी ज्यादा थी, इससे भी आगे यह कि **1906** और **1907** में उनकी भूमिका और बढ़ती गई यानी तुलनात्मक रूप में गांव के मजदूरों की भूमिका कम होती गई। गावों के फैक्टरी मजदूरों ने जो पहले के दशक (**1895.1904**) से संघर्ष के लिए कम तैयार थे, सबसे कम दृढ़ता प्रदर्शित की और **1905** के बाद सबसे तेजी से पीछे हटे। अग्रिम दस्ते, यानी शहरी फैक्टरी मजदूर ने **1906** में तथा उससे भी ज्यादा **1907** में पीछे हटने को रोकने का विशेष प्रयास किया।'' (वही, च**402**ए जोर मूल में)

''धातु मजदूरों और टेक्सटाइल मजदूरों के बीच संबंध इस मायने में चारित्रिक है कि यह मजदूरों के आगे बढ़े हुए हिस्से और मजदूरों के व्यापक हिस्सों के संबंध को प्रतिबिंबित करता है।'' (वही, प**.404**)

लेनिन फैक्टरियों के आकार के आधार पर भी हड़तालों का अध्ययन करते हैं। वे एक तालिका प्रस्तुत करते हैं और फिर अपना निष्कर्ष देते हैं। तालिका इस प्रकार है :

उद्यमों की संख्या के प्रतिशत के हिसाब से हड़तालों की संख्या

उद्यमों का समूह	कुल दस सालों के लिए 1895–1905	1905	1906	1907	1908
20 मजदूर या कम	2.7	47.0	18.5	6.0	1.0
21 से 50 मजदूर	7.5	89.4	38.8	19.0	4.1
51 से 100 मजदूर	9.4	108.9	56.1	37.7	8.0
101 से 500 मजदूर	21.5	160.2	79.2	57.5	16.9
501 से 1000 मजदूर	49.9	163.8	95.1	61.5	13.0
1000 से ज्यादा मजदूर	89.7	231.9	108.8	83.7	23.0

इस पर लेनिन कहते हैं :

''आगे बढ़ा हुआ हिस्सा, जिसे अभी तक हमने विभिन्न जिलों और उद्योगों के समूहों से संबंधित आंकड़ों से देखा था, वह अब उद्यमों के विभिन्न समूहों के आंकड़ों से साफ नजर आता है। इन सालों में यह सामान्य नियम निकलता है कि जैसे–जैसे उद्यमों का आकार बढ़ता है, वैसे–वैसे उन उद्यमों की प्रतिशतता बढ़ती है जिनमें हड़तालें हुयीं। **1905** की चारित्रिक विशेषता यह है कि, प्रथमतः, जितना बड़ा उद्यम होता है, उतना ही बार–बार होने वाली हड़तालों की संख्या बढ़ती है और द्वितीयः **1895.1904** के दशक की तुलना में ***छोटे*** उद्यमों में प्रतिशतता में वृ(तीखी है। यह स्पष्ट रूप से उस विशेष तेजी को दिखाता है जिससे आंदोलन में नये रंगरूट भरती हुए और वे हिस्से जिन्होंने कभी हड़तालों में हिस्सा नहीं लिया था, वे इसमें शामिल हुए। सबसे बड़े उभार के दौर में आंदोलन में खिंचने वाले ये नये रंगरूट सबसे कम स्थिर साबित हुए : **1906** की तुलना में **1907** में उद्यमों की हड़तालों में गिरावट सबसे ज्यादा छोटे उद्यमों में हुयी जबकि सबसे कम वड़े उद्यमों में। यह हरावल दस्ता था जिसने सबसे लम्बे समय तक तथा सबसे दृढ़ता से पीछे हटने को रोकने की कोशिश की।'' (वही, पृ**.45.46**)

ऐसा नहीं है कि लेनिन ने इस मसले पर बाद में अपनी राय बदल ली हो। फरवरी क्रांति के एक–डेढ़ महीने पहले **1905** की क्रांति पर भाषण देते हुए लेनिन ने यह बात कही थी :

''रूसी क्रांति का इतिहास हमें यह बताता है कि उजरती मजदूरों का ठीक हरावल दस्ता ही, उनके चुने हुए तत्व ही सबसे अधिक दृढ़ता और सबसे अधिक आत्मबलिदान के साथ लड़े। जितना ही बड़ा शहर था, संघर्ष में उतनी ही बड़ी भूमिका सर्वहारा वर्ग ने अदा की। तीन सबसे बड़े शहरों– पीटर्सबर्ग, रीगा और वारसा– में, जहां सबसे अधिक वर्ग–चेतन और सबसे अधिक बहुसंख्य मजदूर रहते हैं, कुल मजदूरों की संख्या में हड़तालियों की संख्या, देहाती क्षेत्रों की तो बात ही क्या, अन्य सभी शहरों के हड़तालियों की संख्या से भी बेहिसाब अधिक थी।

''रूस में–संभवतः दूसरे पूंजीवादी देशों में भी–धातुकर्मी सर्वहारा वर्ग का हरावल दस्ता हैं। और यही हमें निम्नांकित शिक्षा प्रद तथ्य देखने को मिलते हैं : **1905** में हड़तालियों की संख्या रूस के मिल मजदूरों की कुल संख्या का **160** फीसदी थी, जबकि उसी साल हर सौ धातुकर्मियों के पीछे **320** हड़ताली थे। यह हिसाब लगाया गया है कि **1905** में हर रूसी मिल मजदूर ने हड़ताल के कारण औसतन **10** रूबल–युद्धों से पहले के विनिमय दर के अनुसार लगभग **26** नंक–खोये, मानो यह रकम उसने संघर्ष के लिए भेंट कर दी। किन्तु यदि हम केवल धातुकर्मियों को ही लें, तो पायेंगे कि उनके नुकसान की रकम तीन गुना अधिक थी! अगली कतार में मजदूर वर्ग के सर्वोत्तम तत्व मार्च कर रहे थे, लड़खड़ाते को संभालते हुए, सोते हुए को जगाते हुए और कमजोरों को हिम्मत बंधाते हुए। ... ...

''**1905** के हड़ताल संघर्ष में रूस के धातुकर्मियों और सूती मिल मजदूरों के अनुपात की और बारीकी से जांच करें। धातुकर्मी सर्वहारा वर्ग में सबसे अधिक मजदूरी पाने वाले, सबसे अधिक वर्ग चेतन और सबसे अधिक सुसंस्कृत हैं। सूती मिल मजदूर, रूस में जिनकी संख्या **1905** में धातुकर्मियों से ढाई गुना अधिक थी, अत्यन्त पिछड़ा हुआ और बहुत कम मजूरी पाने वाला मजदूर समुदाय है, जिनमें से अत्यधिक लोगों ने देहाती क्षेत्रों में रहने वाले अपने किसान रिश्तेदारों से अभी अंतिम रूप से संबंध विच्छेद नहीं किया है।'' ... ... (लेनिन, **1905** की रूसी क्रांति पर भाषण, खण्ड**.6**, पृष्ठ**.234.235**, जोर मूल में)

लेनिन के निष्कर्ष बेहद स्पष्ट हैं और यह ही हमेशा से कम्युनिस्टों के बीच सर्वमान्य रहे हैं। यह भी एकदम स्पष्ट है कि फुटलूज क्रांतिकारियों की सारी बातें इनके विरोध में जाती हैं।

ये लोग कह सकते है समय बदल गया है और पहले की बातें अब लागू नहीं होती। वास्तव में दबी जुबान से वे यही कह भी रहे हैं बस बहाना फोर्डिस्ट पूर्वाग्रहों का बना रहे हैं मानो उनकी बातें फोर्डिस्ट पूर्वाग्रहों के खिलाफ हों लेनिन के नहीं। जो भी हो, यदि समय बदल गया है और मजदूरों के विभिन्न हिस्सों की वर्गीय चेतना अब पहले की तरह नही रही तो इसे महज दावों से साबित नहीं किया जा सकता। इन्हें उन बु(जीवियों के वचनों से भी साबित नहीं किया जा सकता जिन्हें अन्यथा ये लोग मध्यम वर्गीय मार्क्सवादी बु(जीवी कह कर खारिज कर देते हैं। इसके लिए उसी तरह का विश्लेषण पेश करना पड़ेगा जिस तरह का लेनिन ने रूस के लिए किया था। इसके लिए पिछले तीन दशकों के मजदूर संघर्षों, खासकर हड़तालों का विश्लेषण करना पड़ेगा और दिखाना पड़ेगा कि बड़े कारखानों के मजदूर अब संघर्ष नहीं कर रहे हैं। इसके बदले छोटी फक्टरियों और पिछड़े उद्यमों के मजदूर ज्यादा संघर्ष कर रहे हैं। यह दिखाना पड़ेगा कि बड़े

कारखानों के मजदूरों के संगठन खत्म हुए हैं जबकि छोटी फैक्टरियों के संगठन बने और बढ़े हैं। यदि ऐसा नहीं किया जाता और केवल दावा किया जाता है तो इसे खामखयाली कहा जा सकता है। यहां यह काबिलेगौर है कि इस तरह के दावे इनके द्वारा उद्धृत बु(िजीवी ही नहीं करते बल्कि ढेरों उत्तर आधुनिक बु(िजीवी और लैटिन अमेरिका के 'वामपंथी' करते रहे हैं। निश्चय ही ऐसा कहने वाले ये लोग पहले नहीं हैं। इस मामले में इनकी बात बिलकुल सच है कि 'ऐसा कहने वाले हम पहले लोग नहीं हैं।'

पूंजीवादी समाज विकास की आम प्रवृत्ति को देखते हुए यह किसी आधार पर नहीं कहा जा सकता कि आधुनिक उद्योगों की बड़ी फैक्टरियों में काम करने वाले मजदूरों की आम चेतना पिछड़ी हो और पिछड़े उद्योगों की छोटी फैक्टरियों के मजदूरों की आम चेतना उन्नत हो। कोई कारण नहीं है कि गुड़गांव के आटो उद्योग की बड़ी फैक्टरियों के मजदूरों की आम चेतना दिल्ली के बदाम मजदूरों (जो छोटी फैक्टरियों में काम करते हैं) की चेतना से उन्नत न हो। केवल मार्क्सवाद विरोधी गैर सरकारी संगठन मार्का पूर्वाग्रह ही इसका उल्टा सोचने तक ले जा सकता है। केवल विश्व कम्युनिस्ट आंदोलन की तात्कालिक पराजय से पैदा हुयी पराजय मानसिकता ही किसी को वहां पहुंचा सकती है कि यह दावा करे कि पिछड़े उद्योगों की छोटी फैक्टरियों के मजदूर प्रकृति से ही पूंजीवाद विरोधी हैं जबकि आधुनिक उद्योगों की बड़ी फैक्टरियों के मजदूर व्यवस्थापरस्त।

पिछड़े उद्योगो की छोटी फैक्टरियों के मजदूरों की ज्यादा उन्नत चेतना का वर्णन करते हुए ये लोग कहां तक चले जाते हैं उसका एक उदाहरण यह है :

> '' यह मजदूर आम तौर पर एक बहुकुशल मजदूर होता है, जो आदिम से उन्नत उद्योग में काम कर चुका होता है, तथाकथित 'स्वरोजगार' भी कर चुका होता है, पारिवारिक श्रम के साथ घर में भी काम कर चुका होता है, रिक्शा–ठेला–रेहड़ी–खोमचा –पटरी दुकान आदि जैसे काम भी कर चुका होता है और तीन महीने गांव में खेत मजदूरी भी कर आता है।''

पुराने जमाने के पुराने कम्युनिस्ट ऐसे मजदूर को पिछड़ा मजदूर मानते थे जो अभी उजरती गुलामी के संबंधों में पूर्णतया बंधा नहीं है, वह उसके बाहर–भीतर कर रहा है। लेकिन आज के उत्तर आधुनिक जमाने के उत्तर आधुनिक फुटलूज क्रांतिकारी इसे पिछड़ापन मानने के बदले इसका महिमामंडन करते हैं। इसे वे उन मजदूरों से श्रेष्ठ मानते हैं जो उजरती गुलामी में पूर्णतया बंध चुके हैं। प्रसंगवश, ऐसे मजदूर पिछड़े उद्योगों की छोटी फैक्टरियों में ही आम तौर पर पाये जा सकते हैं, आधुनिक उद्योगों की बड़ी पैफक्टरियों में नहीं।

परम्परागत मार्क्सवाद में ऐसे मजदूरो की बहुकुशलता को इस बात का प्रमाण माना जाता था कि अभी वह मजदूर बड़ी फैक्टरियों के श्रम विभाजन में नहीं ढला है। इस रूप में यह बहुकुशलता पिछड़े उत्पादन संबंधों से जुड़ाव का प्रतीक थी। लेकिन उत्तर आधुनिक फुटलूज क्रांतिकारी, जो कठमुल्लावाद को जरा भी अपने पास नहीं फटकने दे सकते, इसे अधिक उन्नत उत्पादन संबंध का प्रमाण मानते हैं। अन्यथा तो पिछड़े उत्पादन संबंध ज्यादा उन्नत चेतना को कैसे जन्म दे सकते हैं? बादाम मजदूरों की छोटी–छोटी फैक्टरियों में विद्यमान उत्पादन संबंध गुड़गांव के आटोमोबाइल उद्योग की बड़ी–बड़ी फैक्टरियों में मौजूद उत्पादन संबंध से उन्नत हैं! इन लोगों का तर्क यहीं तक ले जा सकता है।

IV अधिक राजनीतिक चरित्र वाली मागें

'पूंजीवादी विकास मजदूर वर्ग को उसके रिहायश की जगह के आधार पर कभी विसंगठित नहीं कर सकता' और 'मजदूर आंदालन के लिए ये रिहायशी क्षेत्र संभावना के जबरदस्त स्रोत हैं' को आगे बढ़ाते हुए और वास्तव में अपने असली मंतव्य तक पहुंचते हुए ये लोग रिहायशी क्षेत्र की नागरिक सुविधाओं की समस्याओं को 'अधिक राजनीतिक चरित्र की मांगें' घोषित कर देते हैं और इस तरह मजदूर वर्ग में अपने गैर सरकारी संगठन मार्का काम को सैद्धान्तिक आधार प्रदान कर देते हैं। मजदूर वर्ग का 'समुदाय' में उत्तर आधुनिक रूपान्तरण पूरा हो जाता है। क्या 'कम्युनिटी आर्गनाइजिंग' विश्व सामाजिक मंच से लेकर तमाम एन.जी.ओ. का नारा नहीं रहा है? यहां तक कि बराक ओबामा भी चुनावी राजनीति में पदार्पण से पहले 'कम्युनिटी आर्गनाइजर' ही थे।

ये लोग फरमाते हैं :

> '' ... ... इलाकाई आधार पर संगठित यूनियन कई ऐसे अधिकारों के लिए संघर्ष कर सकती है जो अनिवार्यतः कारखाने से नहीं जुड़े होते, लेकिन मजदूर वर्ग के बेहद महत्वपूर्ण और ***मूलतः और मुख्यतः अधिक राजनीतिक चरित्र वाली मांगें हैं।*** मिसाल के तौर पर, आवास का प्रश्न, सहज सुलभ और सस्ती चिकित्सा सुविधाओं का अधिकार, मजदूरों के बच्चों के लिए शिक्षा का अधिकार, जिन रिहायशी इलाकों में मजदूर रहते हैं उनमें तमाम बुनियादी सुविधाओं की मांग जैसे कि पीने योग्य पानी, बिजली, सैनिटेशन सिस्टम, महिला मजदूरों के लिए शिशु घर आदि। ये मजदूरों की ऐसी मांगें हैं जिनका चरित्र मजदूरों के नागरिक अधिकारों की मांगों जैसा है। ... ... ***किसी भी आर्थिक मांग के मुकाबले इन मांगों के जरिये मजदूर आबादी का ज्यादा व्यापक और सघन राजनीतिकरण किया जा सकता है। ये मांगे प्रकृति से ही राजनीतिक हैं और पूरी पूंजीवादी व्यवस्था को कटघरे में खड़ा करती हैं।*** ये नागरिक पहचान पर मजदूर वर्ग के दावे को एसर्ट करती हैं और इसके जरिये पूंजीवादी नागरिक समाज की सच्चाई को मजदूरों के समक्ष उजागर करने में सहायता करती हैं। ये पूरी पूंजीवादी सत्ता और समाज को मजदूर वर्ग की निगाह में बेनकाब करती है। . .. ... '' (जोर हमारा)

यहां इलाकाई आधार पर संगठित यूनियन द्वारा नागरिक सुविधाओं की मांग को उठाने की बात फर्जी और फालतू है क्योंकि इन मांगों को कारखानों की यूनियनें और इन यूनियनों का फेडरेशन या केन्द्र भी उठा सकता है। असल मसला तो इन मांगों के चरित्र और महत्व का है।

पहली बात तो यह है कि मजदूरों के रिहायशी क्षेत्र से संबंधित नागरिक सुविधाओं की मांग कोई आज पैदा नहीं हुयीं हैं। पूंजीवाद की पैदाइश के समय से ही ये मांगे रही हैं। इसलिए आज इन्हें मजदूर आंदोलन के लिए नयी रणनीति के तौर पर पेश कर देना अपने आप में बहुत कुछ कह जाता है। रिहायशी इलाके की ये समस्याएं एंगेल्स को **1845** में पता थीं जब वे 'इंग्लैण्ड में मजदूर वर्ग की दशा' लिख रहे थे। तब से आज तक समूचे कम्युनिस्ट आंदोलन को ये समस्याएं पता रही हैं। ऐसे में जब इन्हें 'अधिक राजनीतिक चरित्र की मांगों' के रूप में पेश किया जाता है तो यह वास्तव में समूचे कम्युनिस्ट आंदोलन के इतिहास में मजदूर आंदोलन के संदर्भ में एक महत्वपूर्ण संशोधन है। 'अधिक राजनीतिक चरित्र की मांगें' मार्क्स–एंगेल्स या लेनिन को पता नहीं थीं हालांकि ये मांगे तब भी मौजूद थीं'।

दूसरा, इससे यह मतलब निकलता है कि मजदूर आंदालन को इन 'अधिक राजनीतिक चरित्र की मांगों' पर गोलबंद करने के लिए ध्यान केन्द्रित किया जाय। यदि मजदूरो को कार्य स्थल के आधार पर विसंगठित किया जा सकता है लेकिन रिहायश की जगह के आधार पर नहीं, यदि मजदूरों को रिहायश क्षेत्र में पकड़ा जा सकता है लेकिन फैक्टरी में नहीं और यदि कार्यस्थल की मांगों के मुकाबले रिहायश स्थल की मांगें अधिक राजनीतिक चरित्र की हैं तो इसका सीधा सा निष्कर्ष निकलता है कि मजदूरों को रिहायश क्षेत्र के संगठन में रिहायश क्षेत्र की मांगों के लिए गोलबंद किया जाय। इसके लिए किसी इलाकाई या पेशा आधारित ट्रेड यूनियन की जरूरत नहीं है। इनकी सोच का

व्यावहारिक निहितार्थ यही है, बाकी तो सारी बातें प्रसंगवश और गर्दो–गुबार हैं। इस पर भी ये बताना चाहते हैं कि इनकी बातों का व्यावहारिक निहितार्थ गैर सरकारी संगठन मार्का संगठन और संघर्ष नहीं हैं।

जिन नागरिक सुविधाओं की मांगों को इन्होंने ज्यादा राजनीतिक चरित्र की बताया है उनमें से अधिकांश आज भारतीय राज्य औपचारिक तौर पर अपनी जिम्मेदारी मानता है। तब ऐसे में मामला इन सुविधाओं के लिए संघर्ष कर राज्य द्वारा इन्हें अपनी जिम्मेदारी मानने या इनके संबंधित कानून बनाने का नहीं बनता। मामला बस मजदूरों के रिहायशी इलाके में इन्हें व्यवहारतः हासिल करने का बनता है। किसी रिहायशी इलाके में स्कूल या अस्पताल खोलने की मांग किस तरह से 'अधिक राजनीतिक चरित्र की मांग' बन जाती है? आज मजदूरों से संबंधित ज्यादातर कानून छोटी फैक्टरियों में और अक्सर बड़ी पैफक्टरियों में भी लागू नहीं हो रहे हुैं। इन्हें लागू करवाने की मांग क्योकर 'कम राजनीतिक चरित्र की मांग' होगी? वर्तमान ठेका कानून को ही लागू करवाना या इससे भी आगे बढ़कर समूची ठेका प्रथा को ही समाप्त करने की मांग मजदूरों के लिए क्यों कम राजनीतिक चरित्र की मांग होगी?

सच्चाई तो यह है कि आज मौजूदा श्रम कानूनों को ही लागू करवाना एक राजनीतिक संघर्ष बन चुका है। मजदूरों का बड़े पैमाने का देशव्यापी संघर्ष ही वर्तमान स्थिति को पलट सकता है और सरकार को मजबूर कर सकता है कि वह पूंजीपतियों द्वारा इनके उल्लंघन को रोके। आज भारतीय राज्य की अनुमति और सहयोग से ही पूंजीपति मौजूदा श्रम कानूनों का धड़ल्ले से उल्लंघन कर रहे हैं और कानून होना, न होना बराबर कर रहे हैं। नये श्रम कानून, मसलन **6** घंटे का कार्य दिवस तो आगे की बात है। वास्तविकता यह है कि मजदूर वर्ग के इस चुनौती भरे संघर्ष से पलायन करने के लिए नागरिक सुविधाओं के 'अधिक राजनीतिक चरित्र' की बातें की जा रही हैं।

तथ्य यह है कि मजदूर वर्ग देश के पैमाने पर मौजूदा श्रम कानूनों के उल्लंघन को रोकने के राजनीतिक संघर्ष के लिए उठ खड़ा हो तो कार्य स्थल पर विसंगठन समाप्त हो जायगा और इसी के साथ इनकी वर्तमान थीसिस का समूचा आधार भी। तब 'अधिक राजनीतिक चरित्र' वाली बात का भी दम निकल जायगा।

मजदूर वर्ग यदि कार्यस्थल पर विसंगठित हुआ है तथा कारखाना आधारित संघर्ष कमजोर पड़े हैं तो इसमें असेम्बली लाइन के बिखर जाने की उतनी भूमिका नहीं है जितनी राज्य के मजदूर वर्ग विरोधी रुख ग्रहण करने की। इसके पीछे मजदूर वर्ग का विश्व ऐतिहासिक विपर्यय तथा संशोधनवादी कम्युनिस्ट पार्टियों व सामाजिक जनवादी पार्टियों तथा उनके नेतृत्व में चलने वाले मजदूर संगठनों का पूर्णतया पालतू और पतित हो जाना है। आज ये आक्रामक पूंजीपति वर्ग का न केवल मुकाबला नहीं कर सकते, बल्कि अक्सर उनके साथ हैं। ऐसे में अपने ट्रेड यूनियन अधिकारों से भी मजदूर व्यवहारतः वंचित होता गया है। इसका परिणाम हम अपने देश में दो दशकों से देख रहे हैं। इस स्थिति से निजात का रास्ता किसी इलाकाई या पेशा आधारित यूनियन के नुस्खे में नहीं बल्कि मजदूरों के देश व्यापी राजनीतिक संघर्ष में है। मजदूर वर्ग राजनीतिक संघर्ष में पराजय से ही यहां तक पहुंचा है और इससे मुक्ति भी राजनीति प्रत्याक्रमण में ही मिल सकती है। मजदूर आंदोलन के लिए यह आज प्रमुख चीज है। इसके बदले 'अधिक राजनीतिक चरित्र' की नागरिक सुविधाओं की बात करना अर्थवाद ही नहीं बल्कि गैर सरकारी संगठनवाद है। मजदूर वर्ग के राजनीतिक प्रत्याक्रमण की शुरुआत होते ही ये एन.जी.ओ. वादी बातें हवा हो जायेंगी।

जैसा कि पहले कहा गया है, मजदूरों के रिहायशी इलाकों की नागरिक सुविधाओं की बातें हमेशा से कम्युनिस्ट आंदोलन के सामने रही हैं। इसके बावजूद कम्युनिस्टों ने हमेशा कार्यस्थल के संगठन और संघर्ष को प्रमुख माना है। क्या यह यूं ही है? किसी भी समाज में उत्पादन की प्रक्रिया ही प्रमुख होती है और मनुष्य का जैविक पुनरुत्थान उस पर निर्भर करता है। जब उत्पादन संबंधों की प्रधानता की बात की जाती है तो उसमें यह बात निहित है। ऐसे में उत्पादन स्थल के संगठन और संघर्ष की रिहायश स्थल के संगठन और संघर्ष पर प्रधानता सहज स्थापित है। लेकिन अपनी उत्तर आधुनिक दृष्टि के कारण ये लोग ऐसा नहीं सोचते। सच्चाई यही है कि ये लोग अपनी समूची थीसिस में उत्पादन के ऊपर उपभोग को, उत्पादन के दौरान बनने वाले संबंधों के बदले उपभोग के दौरान बनने वाले संबंधों को, उत्पादन में काम आने वाले मालों के बदले उपभोक्ता मालों को और कार्य की स्थितियों के बदले रहन–सहन की स्थितियों को प्रधानता देते हैं। इसका उल्टा मानने वालों को ये अपनी दिव्य दृष्टि से अर्थवादी कहते हैं।

V फुटलूज क्रांतिकारी और फुटलूज सिद्वान्त

हमने इन्हें फुटलूज क्रांतिकारी और इनके सिद्वान्त को फुटलूज सिद्वान्त उक्ति वैचित्रय के लिए नहीं कहा है। इसके पीछे ठोस आधार है।

ये लोग 'फुटलूज लेबर' शब्दावली से बहुत सम्मोहित हैं। इनके अनुसार 'फुटलूज लेबर' का मतलब है ऐसा मजदूर जिसके पावों में मानो चक्का लगा हो और जो अपना पेशा लगातार बदलता रहता है। इसी तर्ज पर हमने इन्हें फुटलूज क्रांतिकारी और इनके सिद्वान्त को फुटलूज सिद्वान्त कहा है क्योंकि ये अपना व्यवहार, व्यवहार की जगह और सिद्वान्त लगातार बदलते रहते हैं। और हो भी क्यों न? अन्य लोगों की तरह ये कोई कठमुल्ला तो हैं नहीं!

अभी बहुत साल नहीं हुए जब ये कारखाना आधारित यूनियन और संघर्ष में लगे हुए थे। और उससे भी बड़ी बात कि इन्होंने परंपरागत ट्रेड यूनियनों को लेकर एक संयुक्त मोर्चा बना रखा था। जब दो जगहों पर इन्होंने इन जमावड़ों को औपचारिक तौर पर गठित करने में सफलता पाई तो इन्होंने इसे मजदूर आंदोलन के लिए एक शानदार पहल घोषित कर दिया। फैक्टरियों की यूनियनों और सरकारी कर्मचारियों की यूनियनों को लेकर गठित इस जमावड़े, जो मजदूर संघर्षों के लिए वास्तव मे किसी काम का नहीं था और कालांतर में उसने इसे व्यवहार में साबित भी किया, को मजदूर आंदोलन में शानदार पहल घोषित किये हुए अभी बामुश्किल पांच साल ही गुजरे होंगे। तब से अब पेंडुलम दूसरे छोर पर जा चुका है। ये कह सकते है कि इन्होंने अनुभव से सीखा है। परन्तु यह अनुभववाद का सबसे भोंड़ा और विकृत नमूना है।

इससे भी बड़ी बात कि इन्होंने पिछले दशक भर से सर्वहारा पुनर्जागरण और प्रबोधन के काम को देश और दुनिया भर के कम्युनिस्ट क्रांतिकारी आंदोलन के लिए प्रमुख कार्यभार घोषित कर रखा है। इसमें भी साहित्यिक–सांस्कृतिक मोर्चे पर वैचारिक कार्य को। इसी के तहत किताबों का प्रकाशन और प्रसार को इन्होंने अपना प्रधान कार्यभार बना रखा है। मजदूर वर्ग की क्रांति के लिए गोलबंदी और इसके एक हिस्से के तौर पर इसके आर्थिक, आंशिक संघर्ष इनके लिए गौण कार्यभार हैं।

अब अचानक ये मजदूर वर्ग को लामबंद करने के लिए अपनी नयी थीसिस लेकर आ गये हैं। इनकी इस नयी थीसिस का सर्वहारा पुनर्जागरण–प्रबोधन से क्या संबंध बैठता है इसका खुलासा ये नहीं करते।

आगे चलकर ये दोनों का तारतम्य बैठा सकते हैं। सर्वहारा फुनर्जागरण–प्रबोधन के तहत किताबों का प्रकाशन–वितरण तथा साहित्यिक सांस्कृतिक विचार–विमर्श मुख्य काम बनता है। ये मजदूरों के रिहायशी इलाके में केन्द्रित करने के पक्षधर हैं। ऐसे में मजदूर बस्तियों में पुस्तकालय–वाचनालय खोलना व कुछ साहित्यिक–सांस्कृतिक गतिविधियां करना इनका सर्वहारा पुनर्जागरण–प्रबोधन हो सकता

है। नागरिक सुविधाओं के लिए कुछ संगठन–संघर्ष इससे बेमेल नहीं होगा। इस तरह 'कम्युनिटी डिवलपमेंट' की इनकी परियोजना मुकम्मल हो जायगी। इससे पूंजीपति वर्ग और उसके राज्य को भी कोई परेशानी नहीं होगी। आखिर उसने हजारों एन.जी.ओ. इसी काम के लिए लगा रखे हैं। इनकी यह एन.जी.ओ. मार्का परियोजना इनके निष्क्रिय उग्रपरिवर्तनवादी चरित्र का और आगे का विकास है।

आखिर में। ये फुटलूज क्रांतिकारी अपने इस फुटलूज सिद्धान्त तक क्यों पहुंचे? इसका जवाब कोई मुश्किल नहीं है। इन्होंने एक जगह कहा है कि 'पिछले दो दशकों के दौरान हुए अधिकांश कारखाना संघर्षों में मजदूर वर्ग को पहले के मुकाबले कहीं अधिक मामलों में पराजय का सामना करना पड़ा है'। हम यहां यह कह दें कि इनके अपने स्वयं के भी पराजय के अनुभव रहे हैं। इन्हीं पराजयों से निष्कर्ष निकालते हुए ये अपनी नयी थीसिस तक पहुंचे हैं।

कहने की बात नहीं कि ये पराजय से निकले हुए वैज्ञानिक निष्कर्ष नहीं है। विज्ञान का तो इन निष्कर्षों को निकालने में इस्तेमाल भी नहीं किया गया है। ये तो पराजय से निकाले हुए पराजयवादी, पलायनवादी निष्कर्ष हैं। ये मजदूर आंदोलन की आज की कठिन चुनौतियों से पलायन कर एन.जी.ओ. मार्का कार्यवाहियों में मशगूल हो जाने के निष्कर्ष हैं। विश्व ऐतिहासिक विपर्यय के आज के दौर में यह कोई अचरज भरी बात नहीं है लेकिन कम्युनिस्ट क्रांतिकारी आंदोलन के लिए दिक्कततलब बात जरूर है। कम्युनिस्ट क्रांतिकारी आंदोलन इस पलायनवादी प्रवृत्ति को दृढ़तापूर्वक खारिज करता है।

....